Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume- 2|Issue-1 |Jan-2024 |Page 39-43

जैन कला एवं साहित्य

[1]दीप्ति गोस्वामी [2]डॉ. प्रदीप कुमार केशरवानी

[1]शोधार्थी, [2]प्राध्यापक व शोध निर्देशक

[1,2]इतिहास विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

[1]deeptigoswami52@gmail.com

भारतीय शिल्प कला के इतिहास में जैन कला का विशिष्ट योगदान है। जैन धर्म भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण समन्वयात्मक रहा है। इस समन्वय में हिन्दू, जैन, बौद्ध तथा अन्य विविध लोकधर्म सम्मिलित हैं। उनमें सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी, सभी का लक्ष्य उस प्राचीन भारतीय आदर्श से ओत–प्रोत है, जिसके अनुसार धर्म नैतिक जीवन के दर्शन तथा अनुशासन का पर्याय है। जैन धर्म ने उक्त आदर्श को चरितार्थ किया है। अन्य मुख्य धर्मों की भाँति जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, स्थापत्य और प्रतिमा कला का भारतीय संस्कृति के प्रति विशिष्ट अवदान है। ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विकास में श्रमण संस्कृति का उल्लेखनीय महत्व रहा है।

जैन धर्म का उद्देश्य यथासम्भव व्यवहारिक नीति का प्रसार था। जटिल कर्मकाण्ड को महत्व न देकर इस धर्म ने सीमित आहार–विहार तथा निग्रह–वृत्ति द्वारा एक ऐसे आचरण का निर्माण किया, जो सार्वजनिक रूप से कल्याणप्रद था। इस धर्म की नैतिकता व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है। इस नैतिक आदर्श को महावीर स्वामी ने अपनी निष्ठापूर्वक साधना वृत्ति द्वारा प्रस्तुत किया। अन्य तीर्थकरों द्वारा भी जिन् मर्यादित शिक्षा–सिद्धान्तों का प्रचार किया गया, वे मानवीय मूल्यों पर आधारित थे। कैवल्य पद के प्रत्यासी जैन साधक, साधना के कठोर नियमों का पालन करते थे। जैन धर्म की प्रतिस्थापना नैतिकता की दृढ़ नींव पर प्रतिफलित हुई। जैन दर्शन, साहित्य तथा विभिन्न ललित कलाएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं।

जैन धर्म के साहित्यिक वर्णन के अनुरूप महावीर स्वामी के पूर्व तेईस तीर्थकर हो चुके थे, चौबीसवें तीर्थंकर स्वयं महावीर स्वामी थे, जितेन्द्रिय होने के कारण जिन कहलाए। जितेन्द्रिय महावीर ने अपने जीवन काल में लगभग सम्पूर्ण भारत में विचरण कर अपने धर्म का प्रचार–प्रसार किया तथा राजपरिवारों और धनाढ्य श्रेष्ठियों से लेकर सामान्य जनता को अपने धर्म में दीक्षित किया। इससे उनके जीवन काल में उनका धर्म बहुत लोकप्रिय हो गया। महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् जैन धर्म के उपासकों के सामने उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति का अभाव खलने लगा। इसके निदान स्वरूप उपासकों ने महावीर स्वामी की वन्दना–अर्चना हेतु प्रतिमा निर्माण के विषय में सोचा तो पाया कि मूर्ति पूजा में स्वयं उनके आराध्य महावीर स्वामी का विश्वास नहीं था इसलिए प्रारम्भ में प्रतिमा बनाकर, पूजा–अर्चना करना असम्भव था। इस समस्या के समाधान हेतु जैन धर्म के उपासकों द्वारा जैन धर्म से सम्बन्धित पूजार्थक प्रतीकों की स्थापना की गयी जिन्हें महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रत्यक्ष उपस्थिति का प्रमाण माना गया। इस रूप में जैन धर्म के उपासकों द्वारा पूजा की जाने लगी।

प्रतिमा–विज्ञान एवं स्थापत्य कला की दृष्टि से जैन साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इससे देश में समय–समय पर कला के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कला शिल्पियों ने अपनी कलाकृतियों में क्षेत्रीय विशेषताओं को भली–भांति समायोजित किया। प्रारम्भ से ही जैन धर्म ने कला में नैतिक तथा चारुत्व तत्वों के समन्वय को प्रभावित किया है। शक–कुषाण और गुप्तकाल की जैन कला में मौलिकता तथा सौम्यता दर्शनीय है। [1]ई. की प्रथम शदी से तृतीय शदी तक निर्मित जैन स्तूपों के चारों ओर बनायी गयी वेदिका का भारतीय कला इतिहास में विशेष महत्व है। मथुरा के जैन स्तूप पर उकेरी गयी विभिन्न मानव प्रतिमाएँ, कथा चित्र

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume- 2|Issue-1 |Jan-2024 |Page 39-43

तथा प्राकृतिक दृश्य आरम्भिक भारतीय कला में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस कला का उत्तरकालीन भारतीय कला पर भी प्रभाव रहा।

जैन धर्म में महावीर स्वामी की शिक्षाओं को नैतिक आधार के रूप में स्थान दिया गया है। जैन अनुश्रुति में उनके पहले इस धर्म का अस्तित्व माना जाता है। [2]अन्य धर्मों की अपेक्षा जैन धर्म में समता, अहिंसा एवं सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चरित्र पर विशेष बल दिया गया। इस धर्म में वैचारिक उन्नयन, समभाव तथा आत्मसंयम का अनोखा संगम है। इसी कारण जैन धर्म की लोकप्रियता अब तक बनी हुई है। कर्मकाण्ड तथा बाहरी आडम्बरों की अपेक्षा जैन धर्म में महावीर के तपोनिष्ठ व्यक्तित्व को आदर्श माना गया। दैनिक जीवन में व्यावहारिक नैतिक आचार–विचार को प्रतिष्ठा प्रदान की गयी। श्रमणों तथा आजीवकों की परम्परा का समन्वय जैन धर्म में द्रष्टव्य है। महावीर की शिक्षाओं ने इस धर्म को अधिक सरल बनाया। [3]बिहार में गया के समीप बाराबर और नागार्जुनी गुफाओं के शिलालेखों से श्रमण संस्कृति की प्राचीन परम्पराओं के साथ–साथ आजीविकों के तपोनिष्ठ जीवन का भी ज्ञान होता है।

जैन कला एवं प्रतिमा–विज्ञान पर पर्याप्त सामग्री सुलभ है। लेकिन अभी तक इस विषय पर अपेक्षित विस्तार से कार्य नहीं हुआ है। जैन प्रतिमा–कला की दृष्टि से न केवल दक्षिण कोसल बल्कि उत्तर भारत से दक्षिण भारत की विशेषताओं के सन्दर्भ में एक सूत्र में बंधा है। जैन प्रतिमा कला के विकास को प्रारम्भिक और परवर्ती अवस्थाओं तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से उत्तर भारत का क्षेत्र महत्वपूर्ण है। जैन धर्म की दृष्टि से भी इसका महत्व है। इसी क्षेत्र में वर्तमान अवसपिर्णी युग के कई जिनों ने जन्म लिया। भारत का उत्तरी भाग जैन कला के क्षेत्र में विशेष अग्रणी रहा क्योंकि महावीर स्वामी की जन्मस्थली एवं निवार्णस्थली दोनों ही उत्तर भारत में थे। प्रतिमा लक्षणों के विकास की दृष्टि से दक्षिण कोसल का विविधतापूर्ण अग्रगामी योगदान है। इस विकास के तीन सन्दर्भ हैं पारम्पारिक, अपारम्पारिक तथा अन्य धमों को कला परम्पराओं का प्रभाव।

जैन प्रतिमा–कला के विकास का प्रत्येक चरण सर्वप्रथम उत्तर भारत क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जैन प्रतिमा–कला का उद्भव भी इसी क्षेत्र में हुआ। [4]मथुरा में शुंग–कुषाण युग में प्रचुर संख्या में आयागपट्ट एवं जैन मूर्तियाँ निर्मित हुई। ऋषभ की लटकती जटा, पार्श्व के सात सर्पफण, जिनों के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न और शीर्ष भाग में उष्णीष तथा जिन् मूर्तियों में अष्ट–प्रतिहार्यों (यथा–सिंहासन, अशोक वृक्ष, प्रभामण्डल, छत्रत्रयी, देवदुन्दुभि, सुरपुष्ट–वृष्टि, चामरधर तथा दिव्यध्वनि) एवं ध्यानमुद्रा के प्रदर्शन की परम्परा मथुरा में ही प्रारम्भ हुई। मथुरा के आयागपट्टों पर सर्वप्रथम ध्यानमुद्रा में आसीन जिन् मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुई। इसके पूर्व की मूर्तियों (लोहानीपुर, चौसा) में जिन् कायोत्सर्ग–मुद्रा में खड़े हैं।

[5]जिन् मूर्तियों में लांछनों एवं यक्ष–यक्षी युगलों का चित्रण भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। जिनों के जीवन दृष्यों, विद्याओं, 24 यक्ष–यक्षियों. 14 या 16 मांगलिक स्वप्नों, भरत, बाहुबली, सरस्वती, क्षेत्रपाल, 24 जिलों के माता–पिता, अष्ट दिक्पालों, नवग्रहों एवं अन्य देवों के प्रतिमा निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख तथा उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुई। दक्षिण भारत में आयागपट्टों, 24 यक्षियों, विद्याओं, जीवन्तस्वामी, जैन युगल एवं जिलों के माता–पिता की मूर्तियाँ निर्मित नहीं हैं। दक्षिण कोसल का क्षेत्र परम्परा विरुद्ध तथा परम्परा में अप्राप्य प्रकार के चित्रणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। उत्तर भारत में होने वाले परिवर्तनों से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे। जैन शिल्प में एकरसता को लाने के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामों को तद्नुरूप शिल्पगत वैविध्य में संयोजित करने हेतु एवं अन्य धर्मावलम्बियों को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायों के कतिपय देवों को भी विभिन्न स्थलों पर निरूपित किया गया है। [6]मथुरा की एक अम्बिका प्रतिमा में बलराम, कृष्ण, कुबेर एवं गणेश का अंकन किया गया है। यदा–कदा नेमिनाथ की प्रतिमाओं में भी बलराम कृष्ण का उत्कीर्णन हुआ है। जटामुकुट

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume- 2|Issue-1 |Jan-2024 |Page 39-43

से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय था। देवी की दो भुजाओं में सर्प एवं त्रिशूल है। देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णतः हिन्दू शिव से प्रभावित है।

[7]श्वेताम्बर स्थलों पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा में कुकुक्ट प्रदर्शित हैं, जो हिन्दू देवी कौमारी का प्रभाव है। कतिपय उदाहरणों में गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है। यह हिन्दू देवी माहेश्वरी का प्रभाव है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो अम्बिका मूर्तियों में देवी के हाथों में दर्पण त्रिशूल घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित है. जो उमा और शिव का प्रभाव है। दक्षिण कोसल में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के महत्वपूर्ण कला प्रतिरूप उपस्थित हैं। इस प्रकार इसकी सामग्री के अध्ययन से श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों के ही प्रतिमा–कला के तुलनात्मक एवं क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है। इससे उनके आपसी सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। इस क्षेत्र में ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला स्थल भी है, जहाँ कई प्रतिमा सम्पदा सुरक्षित है। दक्षिण कोसल में जैन प्रतिमा–कला का जो विकास प्रारम्भ से 14वीं शदी ई तक विभिन्न रूपों में पुष्पित–पल्लवित हुआ, उसका उचित तथा विस्तृत रूप से अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। प्रस्तुत लेख में दक्षिण कोसल में उस युग की जैन प्रतिमा–कला की तकनीक सौन्दर्य एवं प्रतिमा–विज्ञान का विस्तृत विश्लेषण करने का विनम्र प्रयास किया गया है। यहाँ कई स्थलों में जैन स्थापत्य एवं प्रतिमा–कला की प्रचुर राशि प्राप्त हुई है। साहित्यिक स्रोतों के साथ–साथ उक्त पुरास्थलों से सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री का अध्ययन एवं विवेचन किया गया है।

(ख) स्रोत–सामग्री

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में दोनों प्रकार के स्रोत का उपयोग किया गया है–

(i) साहित्यिक श्रोत

(ii) पुरातात्विक श्रोत

(i) साहित्यिक स्रोतः साहित्यिक श्रोत के अन्तर्गत मूल ग्रन्थ और आधुनिक ग्रन्थ दोनों का अध्ययन किया गया है तथा यथा संभव नामोल्लेख किया गया है।

मूल क्षेत्र के रूप में प्राप्त सभी उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थों के समुचित उपयोग का प्रयास हुआ है।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में प्रतिमा–कला से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। जिनों, यक्ष–यक्षियों, विद्याओं एवं अन्य देवों के प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से ये ग्रन्थ महत्व के हैं। प्रारम्भिक जैन कला में अभिव्यक्ति की सामग्री इन्ही ग्रन्थों से प्राप्त की गयी है। इस वर्ग में महावीर के समय से सातवीं शदी ई. तक के ग्रन्थ हैं। इनमें आगम ग्रन्थ, कल्पसूत्र, अंगविज्जा, पउमचरिय, वसुदेवहिंडी, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकनिर्युक्ति आदि प्रमुख हैं। लगभग आठवीं से सोलहवीं शदी ई. के मध्य के श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ग्रन्थ भी हैं, जो मूर्ति–कला से सम्बन्धित विस्तृत सामग्री अपने में समाये हुए हैं। इन ग्रन्थों में चौबीस जिलों एवं अन्य शलाका–पुरुषों, चौबीस यक्ष–यक्षी युगलों, सोलह महाविद्याओं, सरस्वती, अष्ट–दिकपालों, नवग्रहों, गणेश, क्षेत्रपाल, शांतिदेवी, ब्रह्मशांति यक्ष आदि के लाक्षणिक स्वरूप निरूपित हैं। इन व्यवस्थापक ग्रन्थों के आधार पर ही शिल्प में जैन देवों को अभिव्यक्ति मिली। [8]श्वेताम्बर परम्परा के मुख्य ग्रन्थ 'चतुर्विंशतिका', 'निर्वाणकलिका', 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र', 'चतुर्विंशतिजिन्–चरित', 'प्रवचनसारोद्धार', 'आचारदिनकर' एवं 'विविधतीर्थकल्प' है। दिगम्बर परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ 'हरिवंश पुराण', 'आदि पुराण', 'प्रतिष्ठासारसंग्रह', 'प्रतिष्ठासारोद्धार' और 'प्रतिष्ठातिलक' आदि हैं।

जैनेत्तर प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों में हिन्दू देवकुल के सदस्यों के साथ ही जैन देवकुल के सदस्यों की भी लाक्षणिक विशेषताएं विवेचित हैं। इनमें 'अपराजितपृच्छा', 'देवतामूर्तिप्रकरण' और 'रूपमण्डन' मुख्य है।

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume- 2|Issue-1 |Jan-2024 |Page 39-43

कतिपय ग्रन्थ दक्षिण भारत के हैं, जिनका उपयोग तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। इनमें 'मानसार', और टी. एन. रामचन्द्रन की पुस्तक तिरुपरुत्तिकुणरम् ऐण्ड इट्स टेम्पल्स प्रमुख हैं।

शोध क्षेत्र में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के ग्रन्थ एवं महत्वपूर्ण कला के केन्द्र उपस्थित हैं। क्षेत्र की सामग्री के अध्ययन से दोनों ही सम्प्रदाय के श्रोतों का उल्लेख किया जा रहा है। [9]कतिपय जैनेत्तर महत्वपूर्ण ग्रन्थों 'ऋग्वेद', 'ताण्डय महाब्राह्मण', 'महाभारत', 'अष्टाध्यायी', 'स्कन्दपुराण', 'विष्णुपुराण', 'हरिवंशपुराण' बौद्ध ग्रन्थ लंकावतार, तिलोयपण्णाति आदि का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त किया है। आधुनिक ऐतिहासिक ग्रन्थों में आर. सी. गौड़ कृत 'वैदिक क्रोनोलॉजी स्टडीज इन इण्डिया आर्कियोलाजी एण्ड एसियन्ट इंडिया, राय–चौधरी की वैष्णव धर्म का इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। राजबली पाण्डेय की प्राचीन भारत, राधाकुमुद मुकर्जी कृत 'प्राचीन भारत', तथा मोतीचन्द्र की 'सार्थवाह' का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। [10]सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट में कंकाली टीला, मथुरा आदि की जैन मूर्तियों का उल्लेख मिलता है। अस्तु, कनिंघम, फ्यूरर, व्यूलर, स्मिथ आदि के लेखों का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

डी.आर. भण्डारकर की 'जैन आइक्नोग्राफी', ए.के. कुमारस्वामी के 'नोट्स ऑन जैन आर्ट,' 'यक्षज', आर. पी. चन्दा की 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिरि', कामता प्रसाद जैन की 'जैन मूर्तियां', त्रिवेणी प्रसाद की 'जैन प्रतिमा–विधान', के.पी. जायसवाल कृत 'जैन इमेजेज ऑफ मौर्य पीरियड', बी.के. भट्टाचार्या की 'दि जैन आइक्नोग्राफी', एच.डी. संकालिया को 'जैन आइक्नोग्राफी' और 'जैन यक्षज एण्ड यक्षिणीज', आदि का अत्यधिक सहयोग प्राप्त किया है। जैन प्रतिमा–कला पर सर्वाधिक कार्य करने वाले विद्वान् उमाकान्त प्रेमानन्द शाह हैं। [11]इनकी कृतियों एवं लेखों 'स्टडीज इन जैन आर्ट', 'आइक्नोग्राफी ऑफ दि जैन गाडेज सरस्वती', 'ए यूनिक जैन इमेज ऑव जीवन्त स्वामी, 'श्री जीवन्त स्वामी', 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइक्नोग्राफी', वी.एस. अग्रवाल की 'मथुरा आयागपट्टाज', 'भारतीय कला', क्लाज बुन की 'दि जिन् इमेजेज ऑव देवगढ़', आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

डॉ. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी के विद्धतापूर्ण ग्रन्थ 'जैन प्रतिमा विज्ञान' में उत्तर भारत की जैन प्रतिमाओं की विस्तृत विवेचना है। जिसका लाभ हमें मिला है। अमलानन्द घोष कृत 'जैन कला एवं स्थापत्य', आर. एस. गुप्ते की 'हिन्दू बुद्धिस्ट एण्ड जैन आइक्नोग्राफी', जितेन्द्र कुमार की कृतियों 'मास्टर पीसेज ऑफ मथुरा', कैटलॉग ऑफ जैन एण्टिकुटीज मथुरा म्यूजियम तथा ब्रांड माइकल एवं लोवरी ग्लेन डी की पुस्तक 'फतेहपुर सीकरी–ए सोर्स बुक आदि ग्रन्थों का भी सहारा लिया है।

अन्य श्रोतों में आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की एनुअल रिपोर्ट्स, वेस्टर्न सर्किल की प्रोग्रेस रिपोर्ट्स, गजेटियर्स एवं अन्य उपलब्ध प्रकाशनों का भी यथा सम्भव सहयोग लिया है। विभिन्न संग्रहालयों की जैन सामग्री पर प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखों से भी पूर्ण लाभ उठाया गया है। जैन प्रतिमा विज्ञान से सीधे सम्बन्धित सामग्री के अतिरिक्त अनुगामी स्रोत के रूप में अन्य कई प्रकार की सामग्री का भी उल्लेख है। जो आधुनिक ग्रन्थ एवं लेख सूची से उल्लिखित है। जैन धर्म, साहित्य और देवकुल के अध्ययन की दृष्टि से जैन धर्म की महत्वपूर्ण पुस्तकों एवं लेखों से लाभ अर्जित किया है। तिथि एवं कुछ अन्य विवरणों को पुष्टि से स्थापत्य से सम्बन्धित जैन कला के विकास में राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय इतिहास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं लेखों से भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है। ब्राह्मण एवं बौद्ध मूर्तिकला अथवा मूर्ति विज्ञान पर लिखी पुस्तकों का भी समुचित उपयोग किया गया है।

(ii) पुरातात्विक स्रोतः– पुरातात्विक श्रोत में दो प्रकार की पुरानिधियों का अध्ययन एवं संकलन किया गया है–प्रथमतः संग्रहालयों में संरक्षित पुरा जैन कला निधि तथा द्वितीयः पुरास्थलों की मूर्ति सम्पदा का एकैकशः विशद् अध्ययन।

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume- 2|Issue-1 |Jan-2024 |Page 39-43

प्रमुख पुरातात्विक संग्रहालयों की जैन मूर्तियों का विस्तृत अध्ययन है। उल्लेखनीय है कि जहाँ किसी पुरातात्विक स्थल को सामग्री काल एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमाबद्ध होती है. वहीं संग्रहालय की सामग्री इस प्रकार की सीमा से सर्वथा मुक्त होती है।

संदर्भ

01. सरकार, डी.सी., स्टडीज इन ज्योग्राफी ऑफ एन्शिएन्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, द्वितीय संस्करण– 1971 पृष्ठ–42–45
02. दक्षिण कोसल का ऐतिहासिक भूगोल, पृष्ठ–5–6
03. कापर्स इन्स्क्रीप्सनस, इण्डिकेरम, खण्ड 3 क्र. 1 पृष्ठ–12
04. मुनि कांतिसागर महाकोशल में जैन पुरातत्व, शुक्ल अभिनंद ग्रंथ 1955, पू 204–13
05. एपिग्राफिआ इण्डिका, खण्ड 9, पृष्ठ– 271
06. आक्रियोलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, भाग 5. पृष्ठ–12
07. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद 2005–06, पृष्ठ–385–86
08. जैन, हीरालाल पूर्वोक्त, पृ. 307–8
09. मुनि कातिसागर, खण्डहरों का वैभव, वाराणसी, पृ. 117
10. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 4. पृष्ठ 257
11. स्मिथ बी.ए. जैन स्तूपा एंड अदर एण्टिक्टीज फाम मथुरा, पृ. 9–11

पद्मावती प्रतिमा, जगदलपुर संग्रहालय

तीर्थंकर, आरंग, रायपुर

ऋषभनाथ, रायपुर संग्रहालय